भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-4, अंक-1 शुक्रवार, 25 जन' 80	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी मानद सहसम्पादक: डॉ. महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	वार्षिक चन्दा-25.00 प्रति अंक : 2.25

कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

दिव्य सुरसरिता

हमने देख लिया कि जीवुबा और लाडुबा महाराज की धर्मगंगा की गंगोत्रियाँ थी, नारी-उत्कर्ष की पवित्र आद्य वाहिनियाँ (नदियाँ) थी और वे नदियाँ स्वयं महाराज के चरण के अंगूठे से प्रवाहित हुई थी जैसे विष्णुपाद से गंगा प्रवाहित होने की आख्यायिका है। एक समय की बात है–

जीवुबा ने श्री कृष्णावतार याद करके महाराज को कहा,

''....ऐसी लीला का वर्णन कथा में सुना है किन्तु इस आँख से प्रत्यक्ष नहीं देखा है। आप यदि...''

जीवुबा का आधा वचन महाराज ने पकड़ लिया। महाराज के हाथ में उस समय फूलों का गेंद था। वही महाराज ने आकाश में उछाल दिया। इतनें में पवन जोरशोर से चलने लगा। जीवुबा ऊपर देखती ही रह गई। देखते ही देखते गेंद के सब फूल बिखर गए और वे विमान में बदल गए। आकाश में अनेक देव आ पहुँचे और महाराज के दर्शन करने लगे। आकाश में गड़गड़ाहट करते हुए विमान घूम रहे थे और उनके बीच पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीजी महाराज स्वयं दिव्यरूप से विराजमान थे और उनके चरण के अगूंठे से दिव्य मंदाकिनी प्रवाहित हो रही थी और जीवुबा नीचे से देख रही थी कि वह तो स्वयं ही थी !

महाराज ने इस प्रकार कृष्णावतार से भी बढ़ कर दर्शन जीवुबा को करवाया। श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगवदगीता के दिव्यरूप दर्शन से भी यह दर्शन अत्यधिक है क्योंकि यहाँ तो महाराज पृथ्वी पर पार्थिव रूप में और आकाश में दिव्यरूप में एक साथ दिखाई पड़ रहे थे। पार्थिव जीवुबा भी थी और दिव्य सुरसरिता भी थी। महाराज ने स्पष्ट कर दिया कि वह पृथ्वी पर की सामान्य स्त्री या नदी नहीं थी किन्तु महाराज के अंगुष्ठ से प्रवाहित धर्म की दिव्य सुरसरिता थी।

पुरानी पहचान

पहचान थी, अब स्पष्ट हो गया; महाराज की दिव्यता, अपना स्वरूप और महाराज के साथ

अपना हार्दिक सम्बन्ध ! पूर्व की पहचान थी? हाँ, निश्चित। अपनी बीस साल की आयु में जब जीवुबा ने पूर्णिमा के शुभ दिन सर्वप्रथम महाराज का दर्शन किया तब इनके हृदय में कैसे भाव उठे थे? दर्शन के पूर्व कल्पना की थी कि महाराज प्रौढ़ या वृद्ध पुरुष होंगे, बुजुर्ग होंगे। किन्तु महाराज तो थे किशोर चेहरे वाले युवान ! सारे ब्रह्मांड को चलाने वाले थे किन्तु ब्रह्मांड संचालन का तनिक भी बोझा उनके मुख पर नहीं था। बैरागी थे किन्तु शुष्क नहीं थे; मुखमुद्रा प्रसन्न थी। महाराज तो सखा जैसे लगते थे.....जीवुबा के चिरपरिचित ! पहली बार ऐसे व्यक्ति का दर्शन हुआ जिसके चेहरे पर न चिन्ता थी, न शंका। सबके प्रति समान भाव....। उच्चता का अभिनिवेश था ही नहीं, आत्मीयता थी। जीवुबा के हृदय में ऐसी संतृप्ति हो गई जो पहले कभी नहीं हुई थी। परम आत्मीय को कहलवाती हो इस प्रकार इन्होंने पिताजी द्वारा कहलवा भेजाः

''बापु! उनको कह दो कि यहाँ से कहीं न जायें। हमारे साथ गढडा ही चले। आप की बात न माने तो यहाँ ले आइए। यदि मैं उनको कहूँगी तो वे मेरी बात मान जायेंगे.....''

इस प्रकार के प्रेम के अधिकार से श्रद्धा के शब्द वह ही बोल सकती है जो 'जन्म-जन्म की दासी' है। महाराज भी आये और गढडा जाने का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। सब सत्संगियों के बीच जीवुबा ने महाराज को कहा,

''कल रात लोगों ने आपका पूजन किया, बाद में आपने लोगों को कितना अधिक आनन्द दिया ! इतना तेज, ऐसा सिंहासन, ऐसे आभूषण ! मुझे तो देखते देखते मूर्छा आ गई।''

महाराज मंद मंद स्मित करते रहे। बाद में कहा, ''मुझे गढ़डा ले जाते हो, किन्तु फिर मैं जैसा कहूँगा ठीक इसी प्रकार रहना पड़ेगा।''

''आजीवन, महाराज'' जीवुबा ने कहा।

''.... और मैं भी-'' लाडुबा ने कहा।

अहं की विनष्टि भक्ति की प्रथम शर्त है। महाराज प्रेम का मूल्य करते थे, राग का नहीं। राग अभिमान से ही पैदा होता है। अतः दिव्य सम्बन्ध में राग का पहले ही ध्वंस किया जाता है। यहां भी महाराज ने दोनों बहनों के राग का ध्वंस प्रारंभ में ही कर दिया। किन्तु इस समर्पण का अर्थ मूढ़ता नहीं था। जीवुबा महाराज के सामने रोष भी करती थी और महाराज इससे आनन्द भी लेते थे।

जब जीवुबा की शादी की बात स्वयं महाराज चलाने लगे तब एकदम रोष में आकर जीवुबा महाराज के सामने आ कर खड़ी रह गई। अब भगवान और भक्त का संवाद सुनिएः

महाराजः कुछ कहना है, जीवु?

जीवुबा : हाँ, आपने मेरी शादी की बात चलाई है। आपको कह देती हूँ कि आप इस बात में नहीं पड़ना। आज तक मेरा दुर्ग सलामत है। अब हो सके तो आप सहाय करना, वरना चुप रहना। मैंने शादी नहीं करने का निर्णय किया है। इस निर्णय के सब विरोधियों के सामने लड़ने की मेरी शक्ति है, मगर आप.....

इतना कहते हुए ही जीवुबा का कंठ रुद्ध ही गया और आंखों में पानी भर आया।

महाराजः तेरी इच्छानुसार ही होगा जीवु। तू निर्भय रहना। तू सारा जीवन ब्रह्मचारिणी रहेगी।.....तेरे जीवन से अनेक स्त्रियों को प्रेरणा प्राप्त

होगी। अनेकों की मां बनेगी। सारा सत्संग तुझे 'बा' (मा) कह कर पुकारेगा।

फिर तो, जैसा कि हमने आगे देखा जीवुबा की शादी भी हुई, वह ससुराल भी गई किन्तु पति और सास दोनों समझ गये कि यह संसार की नहीं है। अतः इनको मुक्ति भी मिल गई और वह महाराज, संत और सत्संगियों की सेवा में लग गई और स्त्रियों में सत्संग फैलाती रही। संसार रहते हुए भी कितनी त्यागभावना !

भक्ति में तीव्रता अनावश्यक

महाराज उस भावना की बार-बार कसौटी भी करते थे। महाराज ने गढडा छोड़ा.....जीवुबा को गोपियों से भी अत्यधिक वेदना हुई। किन्तु जब इन्होंने सुना कि महाराज गढडा तो क्या गुजरात भी छोड़ देने वाले हैं और उत्तराखंड की ओर जाने वाले हैं तब जीवुबा की सारी शिक्षा लोप हो गई। एकदम अन्न त्याग कर दिया। लोग शीघ्र महाराज के पास पहुँच गये और यह सारी बात कही। महाराज एक ओर से इस महान की भक्ति से खुश हुये तो दूसरी ओर अनशन का शस्त्र भक्ति के लिये भी प्रयुक्त हो वह उनको अच्छा नहीं लगता था। महाराज ने सिखाया है कि सत्संगियों को तीव्र उपायों से दूर रहना। जीवुबा की भक्ति देखकर गुजरात छोड़ने की बात तो महाराज ने छोड़ दी, साथ-साथ तीव्रता का उपाय भी किया।

महाराज ने चारण कवि लाडुदान (भविष्य के ब्रह्मानंद स्वामी) को बुलाकर कहा कि आप जीवुबा को समझाइए कि स्त्री का सर्वोत्तम धर्म पतिव्रत्य है।

लाडुदान जी दीक्षा लेकर साधु बनना चाहते थे, अतः इन्होंने कहाः

''मुझे तो दीक्षा लेनी है। आप मुझे क्यों स्त्रियों के पास भेज रहे हो?''

लाडुदान जी को क्या मालूम कि यह भी एक प्रकार दीक्षा की पूर्व तैयारी है। महाराज ने तो इतना ही कहा–

''अभी तो आपने दीक्षा नहीं ली है, अतः स्त्रियों के पास जाने में आपको आपत्ति नहीं है। बात यह है कि जीवुबा और लाडुबा जिद्द पर आ गई हैं। अपना पतिव्रता धर्म छोड़ कर ससुराल में नहीं जा रही है और यहाँ मुझे बाँध रखा है। मैं कहूँ तो मेरी बात तो दोनों बहनें मानेंगी, किन्तु वह आज्ञा होगी। अपनी इच्छा से वे ससुराल नहीं जायेंगी और इच्छा बिना ससुराल जाना निरर्थक ही जायेगा। आप तो चारण हो, अनेक राज्यों में घूमते हो; राजाओं के रीति रिवाज जानते हो। राजकुमारियों को ससुराल जाना ही चाहिए ऐसा आप रसपूर्वक इनको समझा सकते हो। आप जो कवि हो, रसों के ज्ञाता हो; इनको समझाने में क्या देर लगेगी?

महाराज की लीला अपरंपार थी। लाडुदान जी को महाराज की बात भा गई। उन्होंने शीघ्र कहाः

''महाराज, ऐसा समझा दूँगा कि पीहर में एक क्षण नहीं टिकेंगी। कहूँगा–'धन है, यौवन है, सौन्दर्य है, ससुराल में सम्मान है फिर क्या चाहिए?' मैं तो चला..... ।''

और...लाडुदान जी जीवुबा-लाडुबा को समझाने के लिए चल पड़े। महाराज तो एक कंकर से दो पक्षी मारना चाहते थे। जीवुबा-लाडुबा की अनिवर्चनीय भक्ति तो महाराज जानते थे, किन्तु इसमें अनशन के कारण जो तीव्रता आ गई थी इसको नष्ट करना चाहते थे....क्योंकि तीव्रता में एक प्रकार का राग है। महाराज सत्संग में शुद्ध सात्त्विक भक्ति की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। शुद्ध भक्ति में तीव्रता की छोटी सी लकीर भी नहीं

चाहिए।

दूसरी ओर महाराज लाडुदान जी के ज्ञान का और कवित्त्व शक्ति का अभिमान जीवुबा-लाडुबा की भक्ति के माध्यम से तुड़वाना चाहते थे, क्योंकि तब ही वह दीक्षा लेकर ब्रह्मानंद (आनंद केवल ब्रह्म का, कविता और ज्ञान भी इसकी अपेक्षा निरर्थक है) स्वामी बन सकते थे।

लाडुदान जी तो महाराज की आज्ञा लेकर निकले और पहुँच गए जीवुबा-लाडुबा के पास। लाडुदान जी कवि थे, विद्वान थे। दोनों बहनें यह जानती थीं। अतः इनके आगमन से अत्यन्त प्रसन्न हुई; आदर-सत्कार किया। कवि के साथ बात करने का प्रसंग मिला इससे अत्यधिक प्रसन्नता भी व्यक्त की। कवि ने भी देखा श्रोताजन सहृदयी है। काव्य छटा से दाम्पत्य जीवन की महिमा बोलने लगे। सीताजी की विरह-वेदना, पार्वती जी का पति के लिए कठिन तप, लक्ष्मीजी का प्रेम–ऐसे अनेक दृष्टांत दिये। कवि ने सोचा था कि इन पति-प्रेम के महात्म्यों को सुनकर दोनों बहनें पिघल जायेंगी। किन्तु जब कवि ने बहनों का उत्तर सुना तब चकित रह गया–

''आप कैसे दृष्टांत दे रहे हो? ये सब तो माया के पाश में रहे हैं। इस पाश में से निकलने की शक्ति की बात कीजिए। पतिव्रता तो संसार के सुख का धर्म है। पुण्यशाली लोग स्वर्ग की इच्छा रखते हैं और स्वर्ग में मोजशोख भोग करके अपने पुण्य क्षीण कर देते हैं। ऐसी ही यह बात है। परमात्मा पति से लाख गुना अच्छा है। हमें तो जीवन का सार तो प्रभु के पति प्रेम श्रद्धायुक्त भक्ति में लगता है। हमें तो उनके प्रति जो एकान्तिकी भक्ति का स्वाद लग गया है वह अब छूट नहीं सकता है और इतना भव्य और गहरा प्रेम मिलने के बाद क्यों हम मनुष्य की दासियाँ बनेगी? हमें अब गुड़िया बनने का शौक नहीं है। हमें तो केवल महाराज की भक्ति करनी है, इनकी सेवा में, इनके सन्तों की सेवा में इनके सत्संगियों की सेवा में जो आनन्द आता है वह कहीं नहीं है। आप भी जब महाराज की भक्ति का, सेवा का रस कैसा है वह अनुभव से समझेंगे तब आप संसारी सुख से इसमें कितना अधिक आनन्द है यह समझेंगे। आपका काव्य रस इस भक्ति की ओर, सेवा की ओर जोड़ दीजिए और परमानन्द प्राप्त कीजिए।''

जीवुबा की बात सुन कर कवि आश्चर्यचकित हो गये और सोचते ही रह गये। इतने में लाडुबा बोली–

'आप कवि लोग राजाओं का कीर्तिगान करते हो और इनके वैभव के वर्णन करते हो वह तो झूठे देव की आरती हुई। आप पहले पात्र देखिए, इसके गुण देखिए, बाद में महिमा गाईए।'

कवि तो चुप हो गए। इस भक्ति के सामने कवि का ज्ञानगर्व नष्ट हो गया और महाराज के पास जा कर कहा–**'महाराज मुझे शीघ्र दीक्षा दे दीजिए।'**

महाराज मंद-मंद हंसने लगे। श्रीमद्भागवत में उद्धवजी गोपियों को समझाने गये थे, किन्तु गोपियों की भक्ति के सामने झुक गये थे। ऐसी ही यह घटना घटी। महाराज का उद्देश्य सिद्ध हुआ। महाराज ने लाडुदान को ब्रह्मा का आनन्द देकर ब्रह्मानंद बना दिया और जीवुबा की भक्ति में जो तीव्रता थी वह नष्ट कर दी।

इसी प्रकार महाराज ने ममता भी नष्ट कर दी। एक दिन महाराज सन्तों को दही परोस रहे थे। जीवुबा ने सोचा–'दही पर जो मलाई है वह निकाल लूं, क्योंकि मलाई तो महाराज के थाल में ही परोसनी चाहिए....।' सन्तों को नहीं, और केवल महाराज को ! किन्तु महाराज को ऐसी ममता अच्छी नहीं लग रही थी। वे जीवुबा की इच्छा

समझ गये थे अतः जब दही पर जो मलाई थी वह लेने के लिए जीवुबा ने दही वाला मिट्टी का बरतन महाराज के हाथ से खींचने की कोशिश करी तब महाराज ने पात्र नहीं दिया। इस खिंचातानी में पात्र टूट गया और महाराज ने हँसते-हँसते शीघ्र उस स्थान का त्याग किया और आनन्द से कुएं पर जा कर स्नान करन लगे। जीवुबा समझ गई.....प्रेम और ममता एक नहीं है, इतना ही नहीं प्रेम से ममता का नाश भी होता है। यह एक सूक्ष्म विचार है, क्योंकि प्रायः लोग प्रेम और ममता को एक ही मानते हैं किन्तु ममता व्यक्तिगत राग है। प्रेम तो वह है जो एक व्यक्ति का माध्यम लेकर विश्व-प्रेम की ओर बढ़ता है। व्यक्ति तक सीमित नहीं रहता है। महाराज के लिए मलाई वाला दही और सन्तों के लिए सामान्य दही यह भेद जीवुबा जैसे परम भक्त करें तो महाराज कैसे सहन करेंगे? यह कार्य तो महाराज की शिक्षा से विपरीत था। अतः दही का पात्र टूटने दिया, ममता टूटने दी और समानभाव युक्त प्रेम की प्रतिष्ठा स्वयं श्रीहरि ने जीवुबा के हृदय में कर दी और अपनी धर्म-गंगा का वहन भी व्यवस्थित कर दिया।

सेवाधर्म

बाद में तो जीवुबा महाराज के मन को समझ गई। गंगोत्री का एक ओर बहता हुआ पतला प्रवाह अनेक शाखायुक्त महानद बन गया और सबको अपनी शीतलता से पवित्र करने लगा। अब वह समझ गई कि महाराज की सेवा का अर्थ सभी संत सत्संगियों की सेवा है।

एक समय की बात है जीवुबा कारियाणी से गढडा वापस आ रही थी। गढडा लगभग पास में ही था। तब शहर के बाहर जंगल में देखा तो रास्ते पर एक पेड़ के नीचे साधु खड़े थे। इन्हीं में अखंडानन्द स्वामी थे, जिन्हें डायरिया हो गया था। चलने की शक्ति भी नहीं थी। जीवुबा का अब सर्वभूतानुकम्पी हृदय साधु के दुःख से दुःखी होने लगा। जंगल में स्वयं रथ से उतर पड़ी और स्वामी को अन्दर सुलवाया। रथ चल पड़ा....और जीवुबा धीरे-धीरे चलने लगी.....। इन्होंने अद्‌भुत आश्चर्य का अनुभव किया। दिन का मधुर अन्तिम प्रहर, सुहावनी मौसम, चारों ओर मनोरम प्रकृति–यह सब जीवुबा को इतना सुन्दर लगा कि उनका चित्त शांति के पारावर में लीन हो गया। एक अद्‌भुत समाधि आ गई। बाद में सोचने लगी यह शांति कैसे प्राप्त हुई? इस प्रदेश से ऐसे मौसम में तो मैं बारबार गुजरी हूँ। आज यह नूतन सौन्दर्य का आविर्भाव क्यों और कहाँ से हुआ? उनको महाराज के शब्द स्मृति में आ गए.....उनकी अन्तर्गुहा में वे प्रतिध्वनित होने लगे :

''कष्ट सहन करके की गई सेवा से आत्मा को अत्यन्त सुख मिलता है।''

उपर्युक्त घटना जब महाराज को किसी ने कही तब अत्यन्त प्रसन्न हो गये कि अब जीवुबा की साध पूर्ण हो गई। मिट्टी का कच्चा घड़ा अब पक्का हो गया। बाद में सबको शिक्षा देते हुए कहाः

''स्वेच्छा से महिमा समझ कर सेवा की, तो आनन्द मिला। ऐसी सेवा के मौके खोजते ही रखना चाहिए। इसके लिए आज्ञा का इन्तजार नहीं करना चाहिए।''

शास्त्र में भी लिखा है–

'सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।'

सेवा परम और गहन धर्म है, योगियों के लिए भी दुर्लभ है। जीवुबा का चित्त किस ऊँचाई तक पहुँच गया था और इससे महाराज कितने प्रसन्न थे यह इस प्रसंग से स्पष्ट हो जाता है।

सेवा का देशकालातीत आनन्द

सेवा-धर्म देशकाल में सीमित नहीं है। उससे

अद्‌भुत आनन्द भी देशकाल तक सीमित नहीं है। महान अंग्रेजी नाट्यकार शेक्सपियर के एक नाटक 'मर्चन्ट ऑफ वेनिस' में ऐसा ही प्रसंग आता है। नाटक की नायिका पोर्शिया अपने होने वाले पति बेसेनियो के मित्र एन्टोनियो को 'शायलोक' के पंजे से छुड़वाने के लिए वकील के गुप्त रूप में अपनी सहेली के साथ कोर्ट में गई थी। अपनी तेजस्वी बुद्धि से और युक्ति से इन्होंने एन्टोनियो को मृत्युदंड से बचा लिया। इसके बाद शाम के अन्तिम प्रहर जब वह अपने घर आ रही थी तब उनको सारा विश्व नूतन, सौन्दर्यमय लगने लगा। अपना ही घर और वहाँ की रोशनी उनको शांतिदायक लगी ! सोचने लगी–मेरा घर और यह रोशनी तो मैंने बारबार देखी है। आज क्यों ये सब इतना सुन्दर लगता है? वास्तव में इन्होंने जो अद्‌भुत सेवा की थी, इसके ही कारण सारा विश्व दूसरे चश्मे से ही देखती थी। प्रकृति की मनोरमता आत्मा की मनोरमता से भिन्न नहीं है और आत्मा मनोरम बनता है शुद्ध सेवा से। अपने आत्मा को मनोरम देखने से व्यक्ति के हृदय में आनन्द का पारावार उठता है। जहाँ आनन्द नहीं हैं वहाँ आनन्द खोजने के लिए लोग दौड़ते हैं और मृगजल–मृगमरीचिका–छलवा के पीछे दौड़ते हुए मृग (हिरन) के समान संसार की तप्त बालुका में गिर पड़ते हैं। महाराज ने इस प्रसंग से स्पष्ट कर दिया है कि आनन्द हमारे भीतर है। उसे प्राप्त करने का मार्ग सेवा ही है। सेवा द्वारा ही अंतर आनन्दमय हो जाता है और जब अंतर आनन्द से परिप्लावित होता है तब बाह्य प्रकृति भी सुन्दर लगती है। जीवुबा आनन्द की निर्झरिणी (नदी) बन गई और उस निर्झरिणी का जल आज भी सबको सनातन सुख और शांति दे रहा है।

-क्रमशः

PRAYER

Prayer is a channel of communication with God and opens up a relationship with Him. God listens to our prayer, responds to it and grants our necessity. Prayer is the spiritual power-far more powerful and effective than the gravitational law. Innumerable things are brought by prayer and faith in it than one can imagine. God does not need intellectual talent, worldly knowledge, wisdom, power or force, but He wants our pure heart; God is there and there alone where there is inner voice of the consciousness originating from the silence of our inner most mind and heart. There is a saying of realised saints that a sincere prayer made with a pure heart is always heard. But, there is a science, an art and spirituality in the philosophy and in the feeling of prayer. So here we give authentic spiritual technique wherein humble and sincere prayer of even five minutes time is always and positively heard by god. It is always felt by the sincere aspirant and he is always inspired at every stage untill the enlightement of the soul. As we go on continuously remembring God through prayer the intensity of our longing to have Him increases and we feel His nearness. our mind becomes purer and purer day by day by means of the prayer and continuous remembrance of Him. Continuous remembrance developed into a consciousness not only makes Him feel nearness of god, but also oneness with Him.

Normally, when one is helpless then one tries to resort to some power or some medium or some means to get the things according to ones own will or wish or ideal. When Einstien failed he prayed to God and got the inspiration giving the final answer for the theory of relativity. He prayed at 11.00 P.M. and got the reply at 4.00 P.M. which is known as intuitive

knowledge under the divine inspiration. When Abraham Lincon failed he prayed to God intensly in helpless mood and he got the reply 'march on' and ultimately he won. Macantos who made eighty four researches and sevveral inventions declared at the age of 84 that final touches of my inventions and researches are not from my intelligence and labour, but under some impossible guidance and it happened when I totally relied on some unknowable power which we call as Eternal Brahman. Even Mahatma Gandhi in sabarmati asharam used to initiate evey action and movement with sincere prayer to God- "Raghupati Raghav Raja Ram" Mul Akshar Murti Gunatitanand Swami tell us in several of His talks that a single honest sincere prayer from the heart in a helpless mood and in a childlike manner if done even for five minutes only, it will totally erradicate the old habits, the perversions and temptations, even lust, anger, greedy and jealous nature which hinder our spiritual development. Even Lord Swaminarayan said that if one accepts one's own faults and prays God to forgive him then it is the infinite compassion and love of God which redeems him totally of all his sins. But the spirit in which the prayer has to be done is to be properly understood.

There have been stark is under standings about the conception of God. He is not our servant or the police commissioner that whatever we ask on request to do has to be immeediately done. He alwasy protectsus, lifts us from ignorance and does whatever best in our interest. We have therefore not to ask some silly things from God which are against the eternal law. No doubt, there is nothing impossible for God and He may grant our demands; but number of times it so happens that even if we have prayed, yet things become. There in to positively and in the light of our ignorant mind it creates doubts and confusions about the working of God. Actually, He is the way, the light, the guide, the mother, the father-full controller and reddmer of entire humanity and invariably protects us. Yet our ignorant mind can't understand Him and would always expect things to be done according to our desires, vasanas and whims. Actually prayer is inherent with the intense aspiration for God and there is also full trust and total feeling of acceptance that whateer He does and gives us is in our best interest and thus accept the result gracefully leaving aside the attachments, inclinations and modicatiods of the mind. We have therefore from our research and experiments come to the following conclusion regarding prayer.

1. One has always to see and feel that whatever he demands before any deity-any power or anyone, can it be fulfilled by Him or is He free and controller of those items and can bestow that much favour without any reservation. Such a power is God only or a realised Saint like a Sun.

We in 'Gunatit Samaj are extremely fortunate because here we have a constant and continuous heirarchy of disciplic spiritual succession-here we have living personalities-the supremely realised souls whom we can make sincere prayer.

2. One should make prayer like a helpless child, the way in which Draupadi did, no doubt at the last moment when she felt no rescue but Shri Krishna. Such a prayer comes not from the mind but from the bottom of the heart-from the inner most spirit and it is always heard and fulfilled.

In prayer, one should not even resort to reason, self-effort or any genious power but we must put full trust in the supermacy of His infinite grace and compassion. Those who have surrendered to God alone like Prahalad, Mira, Narsinh Mehta, Naja Jogia, Brahmanand

Regd. No. D (D) 655

Swami and others, their prayers had been heard and the real need had been completely fulfilled as per the inner urge of their soul.

3. Sincere prayer is always with loving affection and in direct communication with the master. One has therefore to know this real philosophy of prayer, otherwise prayer will become mechanical like a machine and inner communication with God or Divine power, which is the essence and the scret of prayer, is broken. Prayer, thus should be done by feeling the constant presence of the Divine power and also with the surity that the living saints and realised Master shall always do the most befitting thing for us, which may lead us to the better living, happiness, bliss and total liberation in this life.

4. In prayer there may be inhernet asking of something but not for egoistic tendency. It must also be in consonance with the established eternal law.

5. In sincere praye in one should not interpret the result, because He knows which is the best in our interest. Moreover, He shall never do wrong to anybody then why should we worry when we have done the prayer with full turst in Him?

6. At last but the least, if one really want positive result, one must try by sharring and conrtibuting amongst fellowbeings whatever one can as an offering to God according to His will and desire. Any such prayer without ego sense or personal desire creates immense power. This is known as 'Suhridbhav' or 'Nishkam Karma'. In world of Pujya Kakajee, 'such prayers are more powerful than even meditation.'

Let us therefore resort to such prayer for us and for others glorifying God's name and wishing good for entire humanity.

-JAISHREE KESWANI

व्रतोत्सवसूची

1. दि.	28.1.80	सोमवार	जया एकादशी, व्रत
2. दि.	3.2.80	रविवार	प.पू. काकाजी का स्वरूपानुभूति दिन
3. दि.	12.2.80	मंगलवार	विजया एकादशी, व्रत
4. दि.	14.2.80	गुरुवार	महाशिवरात्रि
5. दि.	24.2.80	रविवार	नवमी, श्री हरिनवमी
6. दि.	26.2.80	मंगलवार	एकादशी, व्रत
7. दि.	1.3.80	शनिवार	होली, अ.म.मु. प्रागजी भक्त का प्रागट्य दिन

साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदास जी द्वारा योगी डिवाईन सोसाईटी,
ए-103, अशोक विहार-III, दिल्ली-110052 फोनः 711838
मुद्रण स्थानः ठक्कर प्रिंटिंग प्रेस, 2588, बस्ती पंजाबियान, सब्जी मण्डी, दिल्ली-110007